The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 4 | Issue 4 | April 2026
ISSN: 2583-973X (Online), SJIF IF: 5.6
Website: www.theacademic.in

प्राचीन भारतीय शासन संस्थाएँ और आधुनिक लोकतंत्र: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. मगन लाल

सहायक आचार्य (राजनीति विज्ञान विभाग), एस.पी.यू.(पी.जी.) कॉलेज,फालना, पाली-राजस्थान

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.20141951

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Accepted: 23-04-2026

Published: 10-05-2026

Keywords:

जनपद, सभा, समिति, लोकतंत्र, ज्ञान परम्परा

ABSTRACT

यह शोध-पत्र प्राचीन भारतीय शासन संस्थाओं—जनपद, सभा एवं समिति—का विश्लेषण करते हुए उनकी तुलना आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था से करता है। अध्ययन का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि प्राचीन भारतीय शासन संरचनाओं में लोकतांत्रिक तत्व किस सीमा तक विद्यमान थे तथा क्या उनकी निरंतरता आधुनिक लोकतंत्र में दिखाई देती है। यह शोध ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक पद्धति पर आधारित है और इसमें प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा के वैचारिक आधार को भी समाहित किया गया है। अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि यद्यपि प्राचीन शासन संस्थाएँ पूर्णतः लोकतांत्रिक नहीं थीं और उनमें प्रतिनिधित्व सीमित था, फिर भी उनमें विचार-विमर्श, जनसहभागिता, परामर्श आधारित निर्णय प्रक्रिया तथा उत्तरदायित्व जैसे महत्वपूर्ण लोकतांत्रिक तत्व विद्यमान थे। ये तत्व आधुनिक लोकतंत्र के मूल सिद्धांतों के साथ आंशिक समानता रखते हैं और उनके ऐतिहासिक विकास की दिशा को भी स्पष्ट करते हैं।

1. पृष्ठभूमि एवं संदर्भ-परिप्रेक्ष्य:

भारत की राजनीतिक परंपरा अत्यंत प्राचीन, बहुआयामी तथा समृद्ध रही है, जिसकी जड़ें वैदिक काल तक पहुँचती हैं। इस काल में विकसित शासन संस्थाएँ केवल प्रशासनिक इकाइयाँ नहीं थीं, बल्कि वे सामाजिक, नैतिक तथा राजनीतिक जीवन को दिशा प्रदान करने वाली व्यापक संरचनाएँ भी थीं (Altekar, 1958)। प्राचीन भारतीय समाज में शासन व्यवस्था का स्वरूप पूर्णतः केंद्रीकृत नहीं था; इसके विपरीत, उसमें विभिन्न स्तरों पर सामूहिक

सहभागिता, परामर्श तथा विमर्श की सुदृढ़ परंपरा विद्यमान थी। जनपद, सभा एवं समिति जैसी संस्थाएँ इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं कि शासन प्रक्रिया में जनसहभागिता एवं सामूहिक निर्णय को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता था (Sharma, 2005)।

प्राचीन भारतीय शासन प्रणाली को समझने के लिए भारतीय ज्ञान परम्परा का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि यह केवल राजनीतिक ढाँचे तक सीमित नहीं है, बल्कि नैतिकता, धर्म, सामाजिक उत्तरदायित्व एवं लोककल्याण के व्यापक सिद्धांतों को भी समाहित करती है। वैदिक साहित्य, उपनिषद, महाकाव्य तथा शास्त्रीय ग्रंथों में शासन की अवधारणा को 'धर्म' एवं 'ऋत' जैसे सिद्धांतों के माध्यम से व्याख्यायित किया गया है, जो सामाजिक संतुलन एवं न्यायपूर्ण व्यवस्था के प्रतीक हैं (Thapar, 2002)। उदाहरणार्थ, महाभारत में राजधर्म का आधार न्याय, समता एवं लोककल्याण को माना गया है, जबकि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राज्य को 'प्रजा सुख' का साधन बताया गया है, जहाँ शासक का मुख्य दायित्व प्रजा के हितों की रक्षा करना है (Altekar, 1958)।

इसके अतिरिक्त, बौद्ध एवं जैन दर्शन ने भी शासन के नैतिक आधार को सुदृढ़ किया। बौद्ध 'धम्म' सामाजिक समानता एवं करुणा पर बल देता है, जबकि जैन दर्शन अहिंसा एवं अपरिग्रह के सिद्धांतों के माध्यम से शासन में नैतिकता की स्थापना करता है (Sharma, 2005)। इस प्रकार, प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा में शासन को केवल शक्ति के रूप में नहीं, बल्कि लोककल्याण एवं नैतिक उत्तरदायित्व के साधन के रूप में देखा गया है।

दूसरी ओर, आधुनिक लोकतंत्र समानता, स्वतंत्रता, न्याय एवं जनसहभागिता के सिद्धांतों पर आधारित एक उन्नत शासन प्रणाली है, जिसमें सत्ता का अंतिम स्रोत जनता होती है (Heywood, 2013)। इसमें नागरिक अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करते हैं तथा शासन प्रक्रिया में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भाग लेते हैं। भारतीय लोकतंत्र इस दृष्टि से विशेष महत्व रखता है कि यह एक ओर आधुनिक संवैधानिक मूल्यों—जैसे मौलिक अधिकार, विधि का शासन एवं शक्तियों का विभाजन—को अपनाता है, वहीं दूसरी ओर यह अपनी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं से भी गहराई से जुड़ा हुआ है (Austin, 1999)।

इस परिप्रेक्ष्य में यह अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है कि प्राचीन भारतीय शासन संस्थाओं और आधुनिक लोकतंत्र के बीच किस प्रकार की समानताएँ, भिन्नताएँ, निरंतरता एवं परिवर्तन देखने को मिलते हैं। यह शोध इस मूल प्रश्न की जांच करता है कि क्या प्राचीन भारतीय शासन संरचनाओं में लोकतांत्रिक तत्व निहित थे और यदि हाँ, तो वे आधुनिक लोकतंत्र के विकास में किस प्रकार सहायक सिद्ध हुए। साथ ही, यह अध्ययन इस बात का भी विश्लेषण करता है कि वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था में प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा के कौन-कौन से तत्व आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं।

2. शोध समस्या:

प्राचीन भारतीय शासन संस्थाओं में लोकतांत्रिक तत्वों की वास्तविकता एवं उनकी प्रकृति स्पष्ट नहीं है। साथ ही, यह भी अस्पष्ट है कि इनका आधुनिक लोकतंत्र के विकास पर क्या प्रभाव पड़ा है। अतः इस अध्ययन का उद्देश्य इन पहलुओं का विश्लेषण करना है।

3. शोध प्रश्न (Research Questions)

इस अध्ययन में निम्नलिखित शोध प्रश्न निर्धारित हैं—

1. क्या प्राचीन भारतीय शासन संस्थाओं—जनपद, सभा एवं समिति—में लोकतांत्रिक तत्व विद्यमान थे?
2. प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था और आधुनिक लोकतंत्र के बीच क्या प्रमुख समानताएँ एवं भिन्नताएँ हैं?
3. क्या प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा आधुनिक लोकतांत्रिक मूल्यों को प्रभावित करती है?
4. प्राचीन शासन संस्थाओं में जनसहभागिता और उत्तरदायित्व का स्वरूप क्या था?
5. आधुनिक लोकतंत्र के संदर्भ में प्राचीन भारतीय शासन सिद्धांतों की क्या प्रासंगिकता है?

4. शोध के उद्देश्य (Objectives of the Study)

इस अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. प्राचीन भारतीय शासन संस्थाओं—जनपद, सभा एवं समिति—का विश्लेषण करना।
2. प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा के शासन संबंधी वैचारिक आधार का अध्ययन करना।
3. आधुनिक लोकतंत्र की प्रमुख विशेषताओं का विश्लेषण करना।
4. प्राचीन और आधुनिक शासन व्यवस्थाओं के मध्य तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना।
5. लोकतांत्रिक मूल्यों की निरंतरता एवं परिवर्तन को स्पष्ट करना।
6. समकालीन लोकतंत्र में प्राचीन भारतीय शासन सिद्धांतों की प्रासंगिकता का मूल्यांकन करना।

5. शोध विधि (Research Methodology)

प्रस्तुत अध्ययन मुख्यतः गुणात्मक (Qualitative) प्रकृति का है, जिसमें ऐतिहासिक, तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक विधियों का उपयोग किया गया है। ऐतिहासिक विधि के अंतर्गत वैदिक साहित्य, उपनिषद, महाभारत, अर्थशास्त्र तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन किया गया है, जिससे प्राचीन शासन संस्थाओं की संरचना एवं कार्यप्रणाली को समझा जा सके (Sharma, 2005)।

तुलनात्मक विधि के माध्यम से प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था और आधुनिक लोकतंत्र के बीच समानताओं एवं भिन्नताओं का विश्लेषण किया गया है। साथ ही, विश्लेषणात्मक विधि के अंतर्गत विभिन्न विद्वानों के विचारों—जैसे Altekar, Thapar एवं Heywood—का अध्ययन करते हुए शासन की अवधारणाओं की व्याख्या की गई है।

यह अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों (Secondary Sources) पर आधारित है, जिसमें पुस्तकें, शोध आलेख एवं ऐतिहासिक दस्तावेज सम्मिलित हैं।

6. अध्ययन का क्षेत्र एवं सीमाएँ (Scope and Delimitation)

यह अध्ययन मुख्यतः प्राचीन भारतीय शासन संस्थाओं—जनपद, सभा एवं समिति—तक सीमित है तथा इसका कालखंड वैदिक एवं महाजनपद काल पर केंद्रित है। आधुनिक लोकतंत्र के संदर्भ में यह अध्ययन विशेष रूप से भारतीय लोकतंत्र को ध्यान में रखकर किया गया है।

अध्ययन की एक प्रमुख सीमा यह है कि यह केवल द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है, अतः इसमें प्रत्यक्ष क्षेत्रीय अध्ययन (field study) सम्मिलित नहीं है। इसके अतिरिक्त, प्राचीन ग्रंथों की व्याख्या विभिन्न विद्वानों द्वारा भिन्न-भिन्न रूप में की गई है, जिससे निष्कर्षों में कुछ हद तक वैचारिक विविधता संभव है।

7. संबंधित साहित्य का अध्ययन (Review of Literature)

प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था एवं आधुनिक लोकतंत्र के मध्य संबंधों को समझने के लिए विभिन्न विद्वानों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। प्राचीन भारत की राजनीतिक संस्थाओं के अध्ययन में ए. एस. अल्टेकर (1958) का कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने जनपद, सभा एवं समिति जैसी संस्थाओं को संगठित एवं कार्यात्मक शासन इकाइयों के रूप में प्रस्तुत करते हुए यह प्रतिपादित किया कि इन संस्थाओं में परामर्श एवं सहभागिता के तत्व विद्यमान थे, यद्यपि उनका स्वरूप सीमित था।

इसी प्रकार आर. एस. शर्मा (2005) ने प्राचीन भारतीय समाज एवं शासन संरचना का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट किया कि इन संस्थाओं का विकास सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के अनुरूप हुआ तथा वर्गीय संरचना के कारण लोकतांत्रिक सहभागिता सीमित रही। रोमिला थापर (2002) ने सभा एवं समिति को प्रारंभिक जनसहभागिता के उदाहरण के रूप में स्वीकार किया, किन्तु उनके सीमित प्रतिनिधित्व एवं संरचनात्मक बाधाओं पर भी बल दिया।

डी. एन. झा (2004) ने महाजनपद काल की राजनीतिक संरचना, कर व्यवस्था एवं प्रशासनिक संगठन का विश्लेषण करते हुए राज्य के विकासशील स्वरूप को रेखांकित किया। इसी क्रम में उपिंदर सिंह (2008) ने प्राचीन भारत के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास का व्यापक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए शासन संस्थाओं के बहुआयामी विकास को स्पष्ट किया।

प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारधारा के संदर्भ में के. पी. जायसवाल (1924) का महत्वपूर्ण योगदान है, जिन्होंने यह तर्क दिया कि प्राचीन भारत में गणतांत्रिक संस्थाओं का अस्तित्व था और शासन केवल राजतंत्र तक सीमित नहीं था। इसी प्रकार डी. डी. कोसांबी (1965) ने ऐतिहासिक भौतिकवाद के दृष्टिकोण से प्राचीन समाज एवं शासन का विश्लेषण करते हुए सामाजिक संरचना एवं सत्ता संबंधों को समझने का प्रयास किया।

आधुनिक लोकतंत्र के सिद्धांतों के संदर्भ में एंड्रयू हेवुड (2013) ने लोकतंत्र को समानता, स्वतंत्रता एवं जनसहभागिता पर आधारित शासन प्रणाली के रूप में व्याख्यायित किया है। रॉबर्ट ए. डाहल (1989) ने 'पॉलीआर्की' की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए आधुनिक लोकतंत्र के व्यावहारिक स्वरूप को स्पष्ट किया, जबकि अरेंड लाइजफार्ट (1999) ने लोकतंत्र के विभिन्न मॉडलों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया।

भारतीय लोकतंत्र के संदर्भ में ग्रैनविल ऑस्टिन (1999) ने भारतीय संविधान को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बताते हुए लोकतांत्रिक मूल्यों की व्याख्या की है। भीमराव अम्बेडकर के विचार लोकतंत्र को सामाजिक न्याय, समानता एवं संवैधानिक व्यवस्था से जोड़ते हैं। इसी प्रकार अमर्त्य सेन (1999) ने लोकतंत्र को विकास एवं मानवीय स्वतंत्रता के विस्तार के रूप में प्रस्तुत किया है।

इसके अतिरिक्त सुब्रत मुखर्जी एवं सुशीला रामास्वामी (2011) ने भारतीय राजनीतिक विचारधारा के विकास में प्राचीन एवं आधुनिक अवधारणाओं के अंतर्संबंधों का विश्लेषण किया है। बिपिन चन्द्र (2004) ने भारतीय ऐतिहासिक विकास के संदर्भ में राजनीतिक चेतना के क्रमिक विकास को स्पष्ट किया।

उपरोक्त साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय शासन संस्थाओं में लोकतांत्रिक तत्वों की उपस्थिति को विभिन्न विद्वानों ने स्वीकार किया है, किन्तु उनके स्वरूप, सीमा एवं प्रभाव को लेकर मतभेद विद्यमान हैं। साथ ही, प्राचीन भारतीय शासन संस्थाओं एवं आधुनिक लोकतंत्र के मध्य प्रत्यक्ष तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षाकृत सीमित है।

अतः प्रस्तुत अध्ययन इस शोध-अंतर (Research Gap) को भरने का प्रयास करता है, जिसमें प्राचीन भारतीय शासन संस्थाओं एवं आधुनिक लोकतंत्र के मध्य वैचारिक, संरचनात्मक एवं कार्यात्मक संबंधों का विश्लेषण किया गया है।

8. प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा और शासन का वैचारिक आधार

प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा में शासन की अवधारणा अत्यंत व्यापक, बहुआयामी तथा नैतिक मूल्यों पर आधारित रही है। यहाँ शासन को केवल शक्ति या प्रभुत्व के रूप में नहीं देखा गया, बल्कि इसे 'धर्म' तथा 'लोककल्याण' के साधन के रूप में परिभाषित किया गया है। 'धर्म' की अवधारणा प्राचीन भारतीय चिंतन का केंद्रीय तत्व है, जो केवल धार्मिक आचरण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह न्याय, नैतिकता, कर्तव्य, सामाजिक संतुलन एवं सामूहिक हित का समन्वित रूप है (Sharma, 2005)। इस संदर्भ में शासन का प्रमुख उद्देश्य समाज में व्यवस्था, न्याय और संतुलन की स्थापना करना था।

वैदिक साहित्य में 'ऋत' की अवधारणा इस वैचारिक आधार को और स्पष्ट करती है। 'ऋत' को ब्रह्मांडीय तथा सामाजिक व्यवस्था के सिद्धांत के रूप में समझा जाता है, जो यह संकेत करता है कि सम्पूर्ण जगत एक निश्चित नियम और संतुलन के आधार पर संचालित होता है। शासन का दायित्व इस संतुलन को बनाए रखना तथा

सामाजिक जीवन में सामंजस्य स्थापित करना था (Sharma, 2005)। इस प्रकार, प्राचीन भारतीय शासन दर्शन प्राकृतिक नियमों, नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व के समन्वय पर आधारित था।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में शासन के इस वैचारिक आधार को अधिक व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। कौटिल्य ने राज्य को एक सुव्यवस्थित एवं संगठित संस्था के रूप में परिभाषित करते हुए उसके प्रमुख उद्देश्य को प्रजा की सुरक्षा, समृद्धि एवं कल्याण सुनिश्चित करना बताया है। उनका प्रसिद्ध कथन—"प्रजा के सुख में ही राजा का सुख निहित है"—इस बात को स्पष्ट करता है कि शासन की वैधता प्रजा के हितों से जुड़ी हुई है (Altekar, 1958)। कौटिल्य ने प्रशासनिक दक्षता, न्याय व्यवस्था, कर प्रणाली तथा सुरक्षा को राज्य के प्रमुख दायित्वों के रूप में प्रस्तुत किया, जो आधुनिक शासन सिद्धांतों के साथ साम्य स्थापित करते हैं।

महाभारत में भी शासन की अवधारणा को 'राजधर्म' के रूप में व्याख्यायित किया गया है। शांति पर्व में यह स्पष्ट किया गया है कि राजा का प्रमुख कर्तव्य प्रजा की रक्षा करना, न्याय स्थापित करना तथा सामाजिक समता को बनाए रखना है। राजधर्म केवल शासन करने का अधिकार नहीं, बल्कि नैतिक उत्तरदायित्व का प्रतीक है। इसमें यह भी उल्लेख मिलता है कि यदि शासक अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करता, तो उसकी वैधता पर प्रश्नचिह्न लग जाता है, जो उत्तरदायित्व (accountability) के सिद्धांत को दर्शाता है (Thapar, 2002)।

इसके अतिरिक्त, बौद्ध एवं जैन दर्शन ने शासन के नैतिक आधार को और अधिक सुदृढ़ किया। गौतम बुद्ध द्वारा प्रतिपादित 'धम्म' सामाजिक न्याय, करुणा, समानता एवं अहिंसा पर आधारित है। बौद्ध दृष्टिकोण में शासक का दायित्व केवल प्रशासनिक कार्य करना नहीं, बल्कि नैतिक आदर्शों के माध्यम से समाज का मार्गदर्शन करना भी है। इसी प्रकार, जैन दर्शन में अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह और अस्तेय जैसे सिद्धांत शासन के नैतिक आधार को मजबूत करते हैं। ये सिद्धांत सत्ता के दुरुपयोग को नियंत्रित करने तथा समाज में नैतिक अनुशासन बनाए रखने में सहायक होते हैं (Thapar, 2002)।

इस प्रकार, प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा में शासन की अवधारणा केवल राजनीतिक संरचना तक सीमित नहीं रही, बल्कि यह नैतिकता, सामाजिक उत्तरदायित्व, न्याय और लोककल्याण के व्यापक सिद्धांतों पर आधारित रही है। इन सिद्धांतों में लोकतांत्रिक मूल्यों के बीज स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं—जैसे जनहित, उत्तरदायित्व, परामर्श एवं नैतिक शासन। यद्यपि इनका स्वरूप आधुनिक लोकतंत्र की तरह संस्थागत और सार्वभौमिक नहीं था, फिर भी ये तत्व आगे चलकर लोकतांत्रिक विचारधारा के विकास में महत्वपूर्ण आधार प्रदान करते हैं और आधुनिक लोकतंत्र के सिद्धांतों के साथ गहरा साम्य स्थापित करते हैं (Sharma, 2005; Thapar, 2002)।

9. प्राचीन भारतीय शासन संस्थाएँ

प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था बहुस्तरीय, सहभागितापूर्ण तथा सुव्यवस्थित थी, जिसमें विभिन्न संस्थाएँ शासन के संचालन, परामर्श, न्याय तथा जनसहभागिता को सुनिश्चित करती थीं। जनपद, सभा एवं समिति इस व्यवस्था की प्रमुख संस्थाएँ थीं, जो न केवल प्रशासनिक संरचना का आधार थीं, बल्कि लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रारंभिक रूप का भी प्रतिनिधित्व करती थीं।

- **जनपद**

जनपद प्राचीन भारत की एक महत्वपूर्ण राजनीतिक एवं भौगोलिक इकाई थी, जो किसी विशिष्ट जनसमूह (जन) और उसके निवास क्षेत्र (पद) के संयोजन से निर्मित होती थी। यह केवल क्षेत्रीय सीमा नहीं थी, बल्कि एक संगठित सामाजिक-राजनीतिक इकाई थी, जिसके अंतर्गत प्रशासन, अर्थव्यवस्था, सुरक्षा तथा न्याय व्यवस्था का संचालन होता था (Sharma, 2005)।

महाजनपद काल (लगभग 600 ई.पू.) में इन इकाइयों का अत्यधिक विकास हुआ, जहाँ सोलह प्रमुख महाजनपदों का उल्लेख मिलता है। इन महाजनपदों में कर व्यवस्था, सैन्य संगठन, प्रशासनिक विभाजन तथा व्यापारिक गतिविधियों का स्पष्ट स्वरूप दिखाई देता है, जो एक विकसित शासन प्रणाली की ओर संकेत करता है (Jha, 2004)।

जनपद प्रणाली की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता इसका स्थानीय शासन (local governance) पर आधारित होना था। यहाँ प्रशासन केवल केंद्र तक सीमित नहीं था, बल्कि क्षेत्रीय स्तर पर भी निर्णय लिए जाते थे। इससे स्पष्ट होता है कि शासन में विकेंद्रीकरण (decentralization) का तत्व विद्यमान था, जो आधुनिक लोकतंत्र की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। इस प्रकार, जनपद व्यवस्था आधुनिक पंचायती राज और स्थानीय स्वशासन की अवधारणा के प्रारंभिक स्वरूप के रूप में देखी जा सकती है।

- **सभा**

सभा प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण संस्था थी, जिसमें समाज के कुलीन, विद्वान, अनुभवी तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों का समावेश होता था। यह संस्था मुख्यतः परामर्शदात्री (advisory) एवं न्यायिक (judicial) कार्यों का निर्वहन करती थी (Altekar, 1958)।

सभा का प्रमुख कार्य राजा को नीतिगत मामलों में सलाह देना, प्रशासनिक निर्णयों की समीक्षा करना तथा विवादों का निपटारा करना था। यह संस्था शासन में संतुलन (checks and balance) स्थापित करने का कार्य करती थी, जिससे शासक की निरंकुशता पर नियंत्रण बना रहता था।

सभा की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इसमें निर्णय विचार-विमर्श (deliberation) के आधार पर लिए जाते थे। विभिन्न विषयों पर खुलकर चर्चा की जाती थी और सामूहिक सहमति (consensus) के आधार पर निष्कर्ष निकाला जाता था। यह प्रक्रिया आधुनिक लोकतंत्र की संसदीय प्रणाली से समानता रखती है, जहाँ विधायी निकायों में बहस और विमर्श के माध्यम से निर्णय लिए जाते हैं (Thapar, 2002)।

इस प्रकार, सभा को आधुनिक संसद या उच्च सदन (Upper House) के प्रारंभिक रूप के रूप में देखा जा सकता है, जहाँ ज्ञान, अनुभव और तर्क के आधार पर शासन को दिशा प्रदान की जाती थी।

- **समिति**

समिति प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था की सबसे अधिक जनसहभागी (participatory) संस्था मानी जाती है। यह संस्था अपेक्षाकृत व्यापक जनसमूह का प्रतिनिधित्व करती थी और इसमें सामान्य जनता की भागीदारी अधिक होती थी (Sharma, 2005)।

समिति के प्रमुख कार्यों में राजा का चयन, नीतिगत निर्णयों में सहभागिता तथा महत्वपूर्ण राजनीतिक मुद्दों पर जनमत व्यक्त करना शामिल था। इससे स्पष्ट होता है कि समिति केवल औपचारिक संस्था नहीं थी, बल्कि यह वास्तविक जनप्रतिनिधित्व का माध्यम थी।

समिति की कार्यप्रणाली जनमत (public opinion) को प्रतिबिंबित करती थी, जो आधुनिक लोकतंत्र का मूल आधार है। इसमें जनता की आवाज़ को महत्व दिया जाता था और शासन के महत्वपूर्ण निर्णयों में उसकी भूमिका सुनिश्चित की जाती थी।

समिति की यह विशेषता आधुनिक लोकतांत्रिक संस्थाओं—जैसे चुनाव प्रणाली, जनमत संग्रह (referendum) और जनप्रतिनिधि संस्थाओं—से गहरा साम्य स्थापित करती है।

यदि समग्र रूप से देखा जाए, तो जनपद, सभा एवं समिति तीनों संस्थाएँ मिलकर प्राचीन भारतीय शासन प्रणाली को एक संतुलित, सहभागितापूर्ण तथा उत्तरदायी स्वरूप प्रदान करती थीं। जहाँ जनपद स्थानीय प्रशासन और संगठन का आधार था, वहीं सभा ज्ञान एवं परामर्श का केंद्र थी और समिति जनसहभागिता का प्रतिनिधित्व करती थी।

यद्यपि इन संस्थाओं में आधुनिक लोकतंत्र की तरह सार्वभौमिक प्रतिनिधित्व नहीं था, फिर भी इनमें विचार-विमर्श, सहभागिता, उत्तरदायित्व एवं सामूहिक निर्णय जैसे महत्वपूर्ण लोकतांत्रिक तत्व स्पष्ट रूप से विद्यमान थे, जो आगे

चलकर आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था के विकास में आधारभूत भूमिका निभाते हैं (Sharma, 2005; Thapar, 2002)।

10. आधुनिक लोकतंत्र का स्वरूप

आधुनिक लोकतंत्र एक ऐसी विकसित शासन प्रणाली है, जिसमें सत्ता का अंतिम स्रोत जनता मानी जाती है और शासन जनता की सहमति एवं सहभागिता के आधार पर संचालित होता है। इस व्यवस्था में नागरिक न केवल शासन के अधीन होते हैं, बल्कि वे शासन की संरचना और दिशा निर्धारित करने में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। प्रतिनिधिक लोकतंत्र (Representative Democracy) के अंतर्गत नागरिक अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करते हैं और ये निर्वाचित प्रतिनिधि शासन संचालन का कार्य करते हैं (Heywood, 2013)। इस प्रकार, आधुनिक लोकतंत्र में वैधता (legitimacy) का आधार जनमत और जनस्वीकृति होती है।

आधुनिक लोकतंत्र के स्वरूप को समझने के लिए उसके प्रमुख तत्वों का विश्लेषण आवश्यक है। सर्वप्रथम, सार्वभौमिक मताधिकार (Universal Adult Franchise) इसका मूल आधार है, जिसके अंतर्गत प्रत्येक वयस्क नागरिक को बिना किसी भेदभाव के मतदान का अधिकार प्राप्त होता है। यह सिद्धांत समानता (equality) और राजनीतिक भागीदारी को सुनिश्चित करता है।

दूसरा महत्वपूर्ण तत्व विधि का शासन (Rule of Law) है, जिसके अनुसार सभी नागरिक एवं शासक कानून के समक्ष समान होते हैं और शासन कानून के दायरे में रहकर संचालित होता है। इससे सत्ता के दुरुपयोग पर नियंत्रण स्थापित होता है और नागरिकों के अधिकारों की रक्षा सुनिश्चित होती है।

तीसरा प्रमुख तत्व शक्तियों का विभाजन (Separation of Powers) है, जिसके अंतर्गत शासन के तीन अंग—विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका—स्वतंत्र रूप से कार्य करते हैं। यह व्यवस्था संतुलन (checks and balances) को बनाए रखती है और निरंकुशता की संभावना को कम करती है।

चौथा महत्वपूर्ण आधार मौलिक अधिकार (Fundamental Rights) हैं, जो नागरिकों को स्वतंत्रता, समानता, अभिव्यक्ति, धर्म एवं जीवन के अधिकार प्रदान करते हैं। ये अधिकार लोकतंत्र को केवल राजनीतिक प्रणाली ही नहीं, बल्कि मानवीय गरिमा और सामाजिक न्याय पर आधारित व्यवस्था बनाते हैं।

भारतीय लोकतंत्र इन सभी तत्वों का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। भारत का संविधान लोकतांत्रिक मूल्यों—जैसे न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व—को सुनिश्चित करता है तथा शासन को संवैधानिक ढाँचे के भीतर संचालित करता है (Austin, 1999)। इसके अतिरिक्त, भारत में संघीय व्यवस्था, स्वतंत्र न्यायपालिका, निर्वाचन आयोग जैसी संस्थाएँ लोकतंत्र को सुदृढ़ बनाती हैं।

आधुनिक लोकतंत्र का एक महत्वपूर्ण आयाम कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की अवधारणा है। इस सिद्धांत के अनुसार राज्य का उद्देश्य केवल शासन करना नहीं, बल्कि नागरिकों के सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक विकास को सुनिश्चित करना भी है। यह विचार प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा के 'लोकसंग्रह' तथा 'प्रजा सुख' की अवधारणाओं से गहरा साम्य स्थापित करता है, जहाँ शासन का उद्देश्य जनकल्याण और सामाजिक संतुलन को बनाए रखना था।

इस प्रकार, आधुनिक लोकतंत्र एक समावेशी, उत्तरदायी और सहभागितापूर्ण शासन प्रणाली है, जो न केवल राजनीतिक अधिकार प्रदान करती है, बल्कि सामाजिक न्याय और मानव कल्याण को भी सुनिश्चित करती है। यह प्रणाली प्राचीन परंपराओं के नैतिक आधार और आधुनिक संवैधानिक संरचना का एक सशक्त समन्वय प्रस्तुत करती है (Heywood, 2013; Austin, 1999)।

11. तुलनात्मक विश्लेषण (Comparative Analysis)

प्राचीन भारतीय शासन संस्थाओं और आधुनिक लोकतंत्र के मध्य तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि दोनों व्यवस्थाएँ भिन्न ऐतिहासिक एवं सामाजिक संदर्भों में विकसित हुई हैं, तथापि उनके मूलभूत सिद्धांतों में कई समानताएँ एवं महत्वपूर्ण भिन्नताएँ विद्यमान हैं। यह विश्लेषण न केवल लोकतांत्रिक मूल्यों की ऐतिहासिक निरंतरता को उजागर करता है, बल्कि उनके विकास और परिष्कार की प्रक्रिया को भी स्पष्ट करता है।

- **समानताएँ (Similarities)**

प्रथम दृष्टया, प्राचीन और आधुनिक दोनों व्यवस्थाओं में जनसहभागिता (Public Participation) एक केंद्रीय तत्व के रूप में विद्यमान है। प्राचीन भारतीय शासन में समिति जैसी संस्थाओं के माध्यम से जनता की भागीदारी सुनिश्चित की जाती थी, जहाँ सामान्य जन की राय को महत्व दिया जाता था। इसी प्रकार, आधुनिक लोकतंत्र में मतदान प्रणाली (electoral system) के माध्यम से नागरिक सीधे शासन की संरचना को प्रभावित करते हैं। यह समानता दर्शाती है कि शासन की वैधता दोनों ही व्यवस्थाओं में जनस्वीकृति पर आधारित रही है (Sharma, 2005)।

दूसरी महत्वपूर्ण समानता विचार-विमर्श (Deliberation) की परंपरा में दिखाई देती है। प्राचीन काल की सभा में विभिन्न विषयों पर चर्चा, तर्क-वितर्क एवं सामूहिक चिंतन के आधार पर निर्णय लिए जाते थे। यह प्रक्रिया आधुनिक संसद की कार्यप्रणाली से अत्यधिक मिलती-जुलती है, जहाँ विधायी कार्य बहस और विमर्श के माध्यम से संपन्न होते हैं (Thapar, 2002)। इस प्रकार, निर्णय लेने की लोकतांत्रिक प्रक्रिया दोनों व्यवस्थाओं में समान रूप से विद्यमान रही है।

तीसरी समानता सामूहिक निर्णय (Collective Decision-Making) की अवधारणा में निहित है। प्राचीन शासन में राजा पूर्णतः निरंकुश नहीं था, बल्कि उसे सभा एवं समिति के परामर्श के आधार पर निर्णय लेने होते थे। इसी प्रकार, आधुनिक लोकतंत्र में भी निर्णय सामूहिक रूप से निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा लिए जाते हैं। यह सिद्धांत उत्तरदायित्व (accountability) और पारदर्शिता (transparency) को सुदृढ़ करता है।

इसके अतिरिक्त, दोनों व्यवस्थाओं में लोककल्याण (Public Welfare) की भावना भी विद्यमान है। प्राचीन भारतीय शासन में 'प्रजा सुख' को सर्वोच्च माना गया, जबकि आधुनिक लोकतंत्र में 'वेलफेयर स्टेट' की अवधारणा इसी विचार को संस्थागत रूप प्रदान करती है (Heywood, 2013)।

- **भिन्नताएँ (Differences)**

यद्यपि उपर्युक्त समानताएँ महत्वपूर्ण हैं, तथापि प्राचीन और आधुनिक व्यवस्थाओं के बीच कुछ मूलभूत भिन्नताएँ भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं।

सबसे प्रमुख अंतर प्रतिनिधित्व (Representation) के स्वरूप में है। प्राचीन भारतीय शासन संस्थाओं में सहभागिता सीमित वर्ग—जैसे कुलीन, पुरुष एवं विशेष सामाजिक समूहों—तक ही सीमित थी। इसके विपरीत, आधुनिक लोकतंत्र में सार्वभौमिक मताधिकार की व्यवस्था है, जिसके अंतर्गत प्रत्येक वयस्क नागरिक को बिना किसी भेदभाव के मतदान का अधिकार प्राप्त है (Heywood, 2013)। यह लोकतंत्र को अधिक समावेशी (inclusive) बनाता है।

दूसरा महत्वपूर्ण अंतर संस्थागत संरचना (Institutional Structure) में देखा जाता है। प्राचीन काल की संस्थाएँ अपेक्षाकृत अनौपचारिक एवं परंपरागत थीं, जबकि आधुनिक लोकतंत्र में स्पष्ट, संगठित एवं संवैधानिक संस्थाएँ स्थापित हैं—जैसे विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका। ये संस्थाएँ शक्तियों के विभाजन (separation of powers) के सिद्धांत पर आधारित हैं और शासन को संतुलित एवं उत्तरदायी बनाती हैं।

तीसरा प्रमुख अंतर मौलिक अधिकारों (Fundamental Rights) की व्यवस्था में है। आधुनिक लोकतंत्र में नागरिकों को संविधान द्वारा संरक्षित मौलिक अधिकार प्राप्त होते हैं, जो उनकी स्वतंत्रता, समानता एवं गरिमा की रक्षा करते हैं। इसके विपरीत, प्राचीन भारतीय शासन में अधिकारों की ऐसी स्पष्ट और संस्थागत व्यवस्था विकसित नहीं थी, यद्यपि नैतिक एवं सामाजिक दायित्वों के माध्यम से कुछ हद तक सुरक्षा प्रदान की जाती थी (Austin, 1999)।

इसके अतिरिक्त, कानूनी एवं संवैधानिक ढाँचे की दृष्टि से भी आधुनिक लोकतंत्र अधिक विकसित है, जहाँ लिखित संविधान शासन का आधार होता है। प्राचीन काल में शासन मुख्यतः परंपराओं, धर्म और नैतिक मान्यताओं पर आधारित था।

इस तुलनात्मक विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय शासन संस्थाएँ आधुनिक लोकतंत्र की पूर्वपीठिका (precursor) के रूप में देखी जा सकती हैं। जहाँ प्राचीन व्यवस्था में लोकतांत्रिक मूल्यों के बीज विद्यमान थे, वहीं आधुनिक लोकतंत्र ने उन्हें अधिक व्यापक, समावेशी और संस्थागत स्वरूप प्रदान किया है। इस प्रकार, दोनों व्यवस्थाओं के बीच संबंध निरंतरता (continuity) और परिवर्तन (change) का एक संतुलित मिश्रण प्रस्तुत करता है (Sharma, 2005; Heywood, 2013; Austin, 1999)।

12. निरंतरता एवं परिवर्तन (Continuity and Change)

प्राचीन भारतीय शासन संस्थाओं और आधुनिक लोकतंत्र के बीच संबंध को समझने के लिए निरंतरता (continuity) एवं परिवर्तन (change) का विश्लेषण अत्यंत आवश्यक है। यह स्पष्ट करता है कि जहाँ एक ओर प्राचीन परंपराओं के कुछ मूलभूत तत्व आज भी आधुनिक लोकतंत्र में विद्यमान हैं, वहीं दूसरी ओर समय, समाज और विचारधारा के विकास के साथ कई महत्वपूर्ण परिवर्तन भी हुए हैं।

- **निरंतरता (Continuity)**

प्राचीन और आधुनिक शासन व्यवस्थाओं के बीच सबसे महत्वपूर्ण निरंतरता जनमत के महत्व में दिखाई देती है। प्राचीन काल में समिति जैसी संस्थाओं के माध्यम से जनमत को महत्व दिया जाता था और शासन की वैधता जनता की स्वीकृति से जुड़ी होती थी। आधुनिक लोकतंत्र में यह तत्व अधिक विकसित रूप में चुनाव प्रणाली और जनप्रतिनिधित्व के माध्यम से परिलक्षित होता है (Sharma, 2005)।

दूसरी महत्वपूर्ण निरंतरता परामर्श आधारित शासन (Consultative Governance) की परंपरा है। प्राचीन काल में राजा सभा और समिति के परामर्श से निर्णय लेता था, जिससे शासन में संतुलन एवं सामूहिकता बनी रहती थी। इसी प्रकार, आधुनिक लोकतंत्र में संसद, मंत्रिमंडल और विभिन्न समितियों के माध्यम से निर्णय लेने की प्रक्रिया सामूहिक विमर्श पर आधारित होती है (Thapar, 2002)।

तीसरी निरंतरता लोककल्याण (Public Welfare) की अवधारणा में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। प्राचीन भारतीय शासन में 'प्रजा सुख' को सर्वोच्च महत्व दिया गया, जहाँ शासक का दायित्व जनता के हितों की रक्षा करना था। आधुनिक लोकतंत्र में यही विचार 'कल्याणकारी राज्य' (Welfare State) के रूप में विकसित हुआ है, जहाँ सरकार नागरिकों के सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक विकास के लिए उत्तरदायी होती है (Heywood, 2013)।

चौथी महत्वपूर्ण निरंतरता नैतिकता आधारित राजनीति (Ethical Politics) में निहित है। प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा में शासन 'धर्म' और नैतिकता पर आधारित था, जहाँ शासक से अपेक्षा की जाती थी कि वह न्याय, सत्य

और कर्तव्य का पालन करे। आधुनिक लोकतंत्र में भी पारदर्शिता, उत्तरदायित्व और नैतिक आचरण को शासन की आधारभूत शर्त माना

- **परिवर्तन (Change)**

निरंतरता के साथ-साथ आधुनिक लोकतंत्र में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन भी देखने को मिलते हैं, जो इसे प्राचीन व्यवस्था से भिन्न और अधिक विकसित बनाते हैं।

सबसे प्रमुख परिवर्तन प्रतिनिधित्व के विस्तार (Expansion of Representation) में देखा जाता है। प्राचीन शासन संस्थाओं में सहभागिता सीमित वर्गों तक सीमित थी, जबकि आधुनिक लोकतंत्र में सार्वभौमिक मताधिकार के माध्यम से प्रत्येक वयस्क नागरिक को समान राजनीतिक अधिकार प्राप्त हैं। यह लोकतंत्र को अधिक समावेशी और व्यापक बनाता है (Heywood, 2013)।

दूसरा महत्वपूर्ण परिवर्तन संवैधानिक ढाँचे (Constitutional Framework) का विकास है। आधुनिक लोकतंत्र एक लिखित संविधान पर आधारित होता है, जो शासन के सिद्धांतों, संस्थाओं और नागरिकों के अधिकारों को स्पष्ट रूप से निर्धारित करता है। इसके विपरीत, प्राचीन शासन व्यवस्था मुख्यतः परंपराओं, धर्म और सामाजिक मान्यताओं पर आधारित थी (Austin, 1999)।

तीसरा परिवर्तन अधिकारों के संरक्षण (Protection of Rights) में देखा जाता है। आधुनिक लोकतंत्र में मौलिक अधिकारों की स्पष्ट एवं संस्थागत व्यवस्था है, जो नागरिकों की स्वतंत्रता, समानता और गरिमा की रक्षा करती है। प्राचीन काल में अधिकारों की ऐसी औपचारिक व्यवस्था नहीं थी, यद्यपि नैतिक और सामाजिक दायित्वों के माध्यम से कुछ हद तक सुरक्षा प्रदान की जाती थी।

चौथा महत्वपूर्ण परिवर्तन संस्थागत विकास (Institutional Development) में है। आधुनिक लोकतंत्र में विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका जैसे स्वतंत्र एवं संगठित संस्थानों का विकास हुआ है, जो शासन को संतुलित, पारदर्शी और उत्तरदायी बनाते हैं। प्राचीन काल में ये संस्थाएँ अपेक्षाकृत अनौपचारिक और सीमित स्वरूप में विद्यमान थीं (Thapar, 2002)।

इस प्रकार, प्राचीन भारतीय शासन संस्थाओं और आधुनिक लोकतंत्र के बीच संबंध निरंतरता और परिवर्तन के संतुलित समन्वय को दर्शाता है। जहाँ प्राचीन व्यवस्था ने लोकतांत्रिक मूल्यों—जैसे जनसहभागिता, लोककल्याण और नैतिकता—की आधारशिला रखी, वहीं आधुनिक लोकतंत्र ने इन मूल्यों को व्यापक, संस्थागत और अधिक समावेशी स्वरूप प्रदान किया है। यही समन्वय भारतीय लोकतंत्र की विशिष्टता और उसकी ऐतिहासिक गहराई को दर्शाता है।

13. आलोचनात्मक विश्लेषण (Critical Analysis)

प्राचीन भारतीय शासन संस्थाओं—जनपद, सभा एवं समिति—का विश्लेषण यह संकेत करता है कि उनमें लोकतांत्रिक तत्वों की उपस्थिति अवश्य थी, किन्तु उन्हें पूर्णतः लोकतांत्रिक व्यवस्था के रूप में स्वीकार करना उचित नहीं होगा। इन संस्थाओं में विचार-विमर्श, परामर्श, जनसहभागिता तथा उत्तरदायित्व जैसे महत्वपूर्ण गुण विद्यमान थे, जो लोकतंत्र के आधारभूत सिद्धांत माने जाते हैं। तथापि, इनकी संरचना और कार्यप्रणाली में कई ऐसी सीमाएँ थीं, जो इनके लोकतांत्रिक स्वरूप को सीमित करती थीं।

सबसे प्रमुख सीमा सामाजिक असमानता के रूप में दिखाई देती है। प्राचीन भारतीय समाज वर्ण-व्यवस्था पर आधारित था, जिसके कारण शासन में सहभागिता कुछ विशिष्ट वर्गों तक ही सीमित थी। निम्न वर्गों एवं वंचित समूहों को निर्णय प्रक्रिया में समान अवसर प्राप्त नहीं थे। इसी प्रकार, लैंगिक असमानता भी एक महत्वपूर्ण बाधा थी, क्योंकि महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता अत्यंत सीमित थी या लगभग अनुपस्थित थी।

दूसरी महत्वपूर्ण सीमा प्रतिनिधित्व की संकीर्णता थी। सभा और समिति जैसी संस्थाएँ यद्यपि परामर्श और जनमत का प्रतिनिधित्व करती थीं, फिर भी उनमें भागीदारी मुख्यतः कुलीन, विद्वान एवं प्रभावशाली वर्गों तक ही सीमित थी। इससे स्पष्ट होता है कि इन संस्थाओं में व्यापक जनप्रतिनिधित्व का अभाव था, जो आधुनिक लोकतंत्र की प्रमुख विशेषता है।

इसके अतिरिक्त, प्राचीन शासन प्रणाली में संवैधानिक एवं संस्थागत स्पष्टता का अभाव भी देखा जाता है। शासन मुख्यतः परंपराओं, धर्म और नैतिक मान्यताओं पर आधारित था, न कि किसी लिखित संविधान या औपचारिक कानूनी ढाँचे पर। इससे अधिकारों की सुरक्षा और सत्ता के दुरुपयोग पर नियंत्रण सीमित हो जाता था।

हालाँकि, इन सीमाओं के बावजूद यह स्वीकार करना आवश्यक है कि प्राचीन भारतीय शासन संस्थाओं और ज्ञान परम्परा ने लोकतांत्रिक विचारधारा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने शासन में नैतिकता, लोककल्याण, परामर्श एवं उत्तरदायित्व जैसे मूल्यों को स्थापित किया, जो आगे चलकर आधुनिक लोकतंत्र के विकास के आधार बने (Altekar, 1958; Sharma, 2005)।

अतः यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय शासन संस्थाएँ लोकतंत्र का पूर्ण विकसित स्वरूप नहीं थीं, बल्कि वे उसके प्रारंभिक चरण (proto-democratic form) का प्रतिनिधित्व करती थीं। इनकी ऐतिहासिक भूमिका को समझना आधुनिक लोकतंत्र की जड़ों और उसके विकास की प्रक्रिया को समझने के लिए अत्यंत आवश्यक है।

14. निष्कर्ष (Conclusion)

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट रूप से प्रतिपादित होता है कि प्राचीन भारतीय शासन संस्थाएँ—जनपद, सभा एवं समिति—तथा भारतीय ज्ञान परम्परा आधुनिक लोकतंत्र की वैचारिक आधारशिला के रूप में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। यद्यपि इन संस्थाओं का स्वरूप आधुनिक लोकतांत्रिक ढाँचे से भिन्न था और उनमें प्रतिनिधित्व की सीमाएँ तथा सामाजिक असमानताएँ विद्यमान थीं, फिर भी इनमें निहित मूलभूत सिद्धांत लोकतांत्रिक विचारधारा के प्रारंभिक स्वरूप को स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं (K. P. Jayaswal, 1924; R. S. Sharma, 2005)।

प्राचीन भारतीय शासन प्रणाली में सहभागिता, परामर्श, सामूहिक निर्णय एवं लोककल्याण जैसे तत्वों को विशेष महत्व दिया गया, जो आधुनिक लोकतंत्र के मूलभूत स्तंभ हैं। सभा एवं समिति जैसी संस्थाओं में विचार-विमर्श की परंपरा तथा जनमत को महत्व देना इस बात का प्रमाण है कि शासन को केवल सत्ता के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक उत्तरदायित्व के रूप में देखा जाता था (Romila Thapar, 2002)। इसी प्रकार, 'प्रजा सुख' और 'लोकसंग्रह' जैसी अवधारणाएँ आधुनिक लोकतंत्र के 'कल्याणकारी राज्य' सिद्धांत से गहरा साम्य स्थापित करती हैं (Andrew Heywood, 2013; Amartya Sen, 1999)।

हालाँकि, यह भी स्वीकार करना आवश्यक है कि आधुनिक लोकतंत्र ने इन मूल्यों को अधिक व्यापक, समावेशी एवं संस्थागत स्वरूप प्रदान किया है। सार्वभौमिक मताधिकार, मौलिक अधिकारों की संवैधानिक सुरक्षा, शक्तियों का विभाजन तथा स्पष्ट संस्थागत ढाँचा आधुनिक लोकतंत्र को अधिक सुदृढ़ एवं प्रभावी बनाते हैं (Granville Austin, 1999; Robert A. Dahl, 1989)।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय शासन संस्थाएँ लोकतंत्र का पूर्ण विकसित रूप न होकर उसके प्रारंभिक एवं वैचारिक स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनके भीतर निहित लोकतांत्रिक तत्वों ने आधुनिक लोकतंत्र के विकास की दिशा को प्रभावित किया है। इस प्रकार, प्राचीन और आधुनिक के बीच संबंध निरंतरता एवं परिवर्तन का एक संतुलित समन्वय प्रस्तुत करता है, जो भारतीय लोकतंत्र की विशिष्टता को रेखांकित करता है (Arend Lijphart, 1999)।

15. सुझाव (Suggestions)

प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं—

1. भारतीय लोकतंत्र में स्वदेशी परंपराओं का समावेशन

भारतीय लोकतंत्र को केवल पश्चिमी मॉडल के रूप में न देखकर उसमें प्राचीन भारतीय शासन परंपराओं एवं ज्ञान परम्परा के मूल्यों—जैसे लोककल्याण, परामर्श आधारित निर्णय एवं नैतिक शासन—को समाहित किया जाना

चाहिए। इससे लोकतंत्र अधिक सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक और समाजोन्मुख बन सकेगा (R. S. Sharma, 2005; Subrata Mukherjee, 2011)।

2. शिक्षा में प्राचीन राजनीतिक विचारों का समावेश

विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारों, शासन संस्थाओं एवं ज्ञान परम्परा को शामिल किया जाना चाहिए, जिससे विद्यार्थियों में लोकतांत्रिक मूल्यों की ऐतिहासिक समझ विकसित हो सके (Romila Thapar, 2002; Bipan Chandra, 2004)।

3. लोकतांत्रिक मूल्यों के सुदृढ़ीकरण हेतु ऐतिहासिक अध्ययन को बढ़ावा

लोकतंत्र के मूलभूत सिद्धांतों—जैसे सहभागिता, समानता, उत्तरदायित्व एवं न्याय—को सुदृढ़ करने के लिए ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए (Andrew Heywood, 2013; Amartya Sen, 1999)।

4. नैतिकता आधारित राजनीतिक संस्कृति का विकास

प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा में 'धर्म' और नैतिकता को शासन का आधार माना गया है। वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था में भी पारदर्शिता, उत्तरदायित्व एवं नैतिक आचरण को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है (B. R. Ambedkar)।

5. विकेंद्रीकरण और स्थानीय स्वशासन को सुदृढ़ करना

जनपद जैसी प्राचीन संस्थाओं से प्रेरणा लेते हुए पंचायती राज एवं स्थानीय स्वशासन को और अधिक सशक्त बनाया जाना चाहिए, जिससे लोकतंत्र की जड़ें जमीनी स्तर पर मजबूत हो सकें (Granville Austin, 1999; Arend Lijphart, 1999)।

अतः उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय शासन संस्थाएँ—जनपद, सभा एवं समिति—न केवल प्रशासनिक संरचनाएँ थीं, बल्कि उन्होंने लोकतांत्रिक मूल्यों के बीजारोपण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यद्यपि उनका स्वरूप सीमित और पूर्णतः समावेशी नहीं था, फिर भी उनमें निहित विचार-विमर्श, जनसहभागिता, उत्तरदायित्व तथा लोककल्याण की भावना आधुनिक लोकतंत्र के विकास की आधारशिला सिद्ध हुई। इस प्रकार, प्राचीन परंपराओं और आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था के बीच एक सशक्त वैचारिक निरंतरता परिलक्षित होती है, जो यह दर्शाती है कि भारतीय लोकतंत्र केवल आयातित अवधारणा नहीं, बल्कि अपनी ऐतिहासिक जड़ों से पोषित एक विकसित एवं समन्वित व्यवस्था है।

16. संदर्भ सूची

1. अल्टेकर, ए. एस. (1958). प्राचीन भारत में राज्य और शासन. मोतीलाल बनारसीदास।
2. ऑस्टिन, ग्रैनविल. (1999). भारतीय संविधान: एक राष्ट्र की आधारशिला. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. अम्बेडकर, भीमराव. (1948). भारत का संविधान: निर्माण की प्रक्रिया. भारत सरकार।
4. चन्द्र, बिपिन. (2004). आधुनिक भारत का इतिहास. ओरिएंट ब्लैकस्वान।
5. डाहल, रॉबर्ट ए. (1989). लोकतंत्र और उसके आलोचक. येल यूनिवर्सिटी प्रेस।
6. हेवुड, एंड्रयू. (2013). राजनीति (चौथा संस्करण). पालग्रेव मैकमिलन।
7. झा, डी. एन. (2004). प्राचीन भारत: ऐतिहासिक रूपरेखा. मनोहर पब्लिशर्स।
8. जायसवाल, के. पी. (1924). हिन्दू राजनीति. बटरवर्थ एंड कंपनी।
9. कोसांबी, डी. डी. (1965). प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता. रूटलेज।
10. लाइजफार्ट, अरेंड. (1999). लोकतंत्र के प्रतिरूप. येल यूनिवर्सिटी प्रेस।
11. मुखर्जी, सुब्रत, एवं रामास्वामी, सुशीला. (2011). भारतीय राजनीतिक विचार: परंपरा और आधुनिकता. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
12. सेन, अमर्त्य. (1999). विकास के रूप में स्वतंत्रता. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
13. शर्मा, रामशरण. (2005). भारत का प्राचीन अतीत. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
14. सिंह, उपिंदर. (2008). प्राचीन और प्रारंभिक मध्यकालीन भारत का इतिहास. पियरसन एजुकेशन।
15. थापर, रोमिला. (2002). प्रारंभिक भारत: उद्गम से 1300 ईस्वी तक. यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।